द्विपर्णा

अपर्णा महांति

भाषांतर-महेन्द्र शर्मा

❖ प्रेम और अंतिमतः आंनद के लिए समस्त बंद्दनों से मुक्ति प्रस्तावित करना और इस ओर पग धरते अग्रसर होना दो अलग बातें हैं। वांछित अभिलाष की संचितये कविताएँ प्रेम और आंनद की चिन्हारी करती स्वयं इन्हीं में रूपांतरण है।

❖ कुछ स्वीकृत रेखाओं के भीतर मनुष्य का सुकुमारतम सम्मोहन और सर्वश्रेष्ठ जिज्ञासा बंदी नहीं है। मुक्त प्रक्रिया से उसके निकटतम हो सकती है कविता। शब्द जब सहज समाधि मुद्रा में आएँ तो वह दुश्तर प्रक्रिया सरलतर होती चलती है – सुनो/ एक रात अपने साथ मुझे गुजारने दोगे/ कई कई भ्रांतियो/ और छलना की बेड़ियों को/ मेरी गर्दन पाँव और कमर से/ खोल सकेंगी/ सिर्फ तुम्हारी उँगलियाँ/ केवल तुम्हारे ओंठों के/ स्वाक्षर से/ मेरी सारी देह में/ ग्रहित होगा/ शुद्ध सुखानुभव का/ अंतिम प्रस्ताव।

❖ जीवन स्थितियों को भुगतने की विभिन्न मानविक मुद्राएँ अपने अपने ढंग से उन्हें भुगतती और विश्लेषित करती हैं। सहज भोक्ता जब सहज सहज अभिव्यक्ति करता है तो उसे हम साहसिक कह देते हैं– एक तो अपने में भय के कारण या फिर अन्य के। नर–नारी के भेद से नारी के लिए सुख दुख आनंद भोगने के लिए भी पारंपरिक तौर पर अलग विशिष्ट मान और माप बनाए गए थे जो आज भी बदस्तूर स्वीकृत हैं। ये कविताएँ उन मापों मानदंडों को स्पष्ट अस्वीकार करती हैं। इनसे सहज आनंद का सोता फूट निकलता है।

❖ व्योमाकार निराभरण काव्य सत्ता 'उस' को समर्पित होती हुई अवयविक अदृष्ट आनंद का रूप साकृत करने का उदाहरण, अपर्णा की ये कविताएँ।

प्रकाशक

द्विपर्णा

अपर्णा महांति

भाषांतर

महेंद्र शर्मा

द्विपर्णा

अपर्णा महांति

भाषांतर

महेंद्र शर्मा



मौलिक साहित्य प्रकाशन

162-D, कमला नगर, दिल्ली-110007

द्विपर्णा

संस्करण प्रथम 2005

ISBN **81-89123-14-9**

मूल्य 125/-

प्रकाशक मौलिक साहित्य प्रकाशन
162-D, कमला नगर, दिल्ली-110007
Ph:. 23844450, (M) 9312342925, 9313780149

शब्द संयोजक कॉम स्कैन, निरंकारी कालोनी
दिल्ली-110009

मुद्रक रोशन ऑफसेट
शाहदरा, दिल्ली - 110052

-:- सूची -:-

-:- देह सुख -:-

मुझे क्या
जरुरत नहीं सोचते हो,
अपनी रूचि और
आनंद अनुयायी
देह-सुख?

संबोधन शून्य मिलन का उच्छ्वास।
विमुक्त-रति-विलास।
    निशर्त्त आसक्ति से सरोबार निशिथ की .
    भीगी भीगी छाती का आश्लेष।
तुम्हारे स्वीकृत अवलंबनों के
ऊर्ध्व में
काय-मनो-वाक्य में
अनायास-संगम का
छलहीन स्फटिक-उल्लास।
सुख तो सुख
सुख के लिए
वैध क्या?
क्या अवैध?

जहाँ
आत्मा के मोहन से सुख
प्राण के दहन से भी सुख
वहाँ

घट तो मिट्टी का
एक भंगुर माध्यम...
बूदँ भर अमृत-धारण योग्य
कमनीय करते करते
उसे बार बार तोड़
बार बार गढ़ना भी सुख है
पाप क्या?
पुण्य क्या?

तीन रेखाओं के भीतर
कैद किया जा सकता है क्या
सर्वश्रेष्ठ जिज्ञासा को?
यश-विभव-परिचय की
परिधि में...
केंद्रिभूत किया जा सकता है क्या
प्रेम को?
सुकुमारतम सम्मोहन को?
केवल एक उत्तराधिकारी के
जातक-चक्र रूप में सजाकर
क्या सुख में
सम्मोहित किया जा सकता है देह को?

-:- अन्वेषा -:-

मैं स्वीकार करती हूँ
देह देकर
अनेक देह की
गली कूचे परखी हूँ
देखी हूँ, तलाशी हूँ।

मैंने खोजी है
किस देह के
माँस ठाँव में सम्मोहन है
रक्त की जगह है प्रेम।
मैंने जानना चाहा है
किस अभिसार में होता है
आत्मसंभोग का आमंत्रण।
किस कुंजवन में सजी है
मृत्यु की फूल सेज
किस नदी कूल से आती है
अनाहत जीवन की वंशीध्वनि।
किस केलि सरोवर में होता है
चेतना के शेषतम कमल का
उन्मीलन।

किसके आवेग में छिपा है
सकल तुच्छता का तिरस्कार
अंतरंग अनधिकार।

किस परिणय में सन्यास
परिरंभण में प्रलय
रेत में समाधि
चुंबन में कविता है।
मेरी जीवनाजंली के
ऊर्ध्वायन में
इतना ही चुन चुन
तोड़ लाने को
बाघ की दहाड़ और
अजगर की फूंत्कार
बेखातिर कर
इस वन से उस वन
खोजी हूँ मैं बहुत खोजी हूँ

मुझे भोगना पड़ा है
अयुत जन्म का बनवास
प्रेत पिशाच का आतंक
विषाक्त कीट दंशन
फिसलन राक्षसी प्रलोभन।

ढाई आखर के
मंत्रसिद्ध सात्विक-विकार को
मुठा कर
अतिक्रम करना पड़ा है
सूर्यहीन
दुस्तर दीर्घपथ
जीवन छोड़ भुला।

छाती को जकड़
अंजान सुगंध फूल की लता भी
दरकिनार कर
रास्ता खोलना पड़ा है
कभीकभी......
आखिरकार
बेरा ढरते ढरते
संझा डूबते न डूबते
मेरी क्लांत देह
और एक बार नई
गढ़ी गई-सी नन्ही मुन्नी एक
ध्रुवतारा द्युतिभरी
चमकती आँखों से
मुझे ये अरण्य सीमा पार होने की
राह पूछ रही है।

-:- अच्छा लगता है -:-

क्यों इतना अच्छा लगता है
तुम्हारी खातिर निमिष-निमिष झूरना?

सबसे छिप छिप अलग खिसक
अकेले में आँखे मूँदे
तुम्हारे अकल्पनीय रूप को
छाती में दबाए मर जाना?

योजन योजन व्यवधान को
आवेग छोर से जोड़
कान लगाए परस्पर निश्वास सुनना।

हवा के ओंठों से
चुंबन छुड़ा लाकर
परस्पर ओंठों पर थोपना।

रक्त माँस अस्थि को
शब्दों की लहर-माला कर
गुँथ लिपट भाव-रति-समुद्र के
तट लोट-लोट जाना।

छाया से एकाकीपन को
द्वार जगुआर कर
भीतर, युगनद्ध सीत्कार में

रात गुजराना
इतना क्यों अच्छा लगता है
तुम्हें देखना तुम्हें पाना
तुम्हारे साथ सुख में मातना
फिर तुम्हे गँवा देना?
तुम कहते हो
-इस प्रश्न का उतर नहीं
मैं कहती हूँ
-चलो देखें
दोनों मिल कर
भोर बेरा अस्तराग
दक्खिनी झोंका, घन मेघ
द्रवित माटी उच्छल झरनों
फूल भरे शालवन, तारों भरे नभ
या मेरी देह में खिल खिलाते
तुम्हारे ओंटों के दागों को
इस प्रश्न का
उत्तर पूछ कर...।

-:- आकांक्षा -:-

बहुत इच्छा हो रही है
तुम्हें एकबार
पाने की
ओंठों से
छाती से...।

दिन भर
पाँव धरती हूँ
किसी तरह
रास्ता चीन्ह चीन्ह।
पर तुम जैसे पत्थर से
चोट खाकर
रक्ताक्त होती हूँ
मैं नित रात में।
सबसे आश्चर्य की बात जानते हो?
प्रति आघात सहित
उस पत्थर भीतर से
'आहा' पद सुनाई देता है
खूब कोमल और कातर स्वर में।

बार बार वहाँ
माथा पीट लहू लुहान होने से
मैं इसलिए निवृत्त हो पाती नहीं
मरने की भी इच्छा करती नहीं।

कहीं जगत से
वह निर्मल 'आहा' पद
गुम न हो जाए।
मैं सीझती रहती हूँ
बस इसी डर में।

जानते तो हो
यहां कोई
चिरदिन रहने को आता नहीं।
मुझे जरुर
दिन रात की इस छटपट से
निकल जाना होगा।

जितना भी कठोर पत्थर हो
उसे भी एक दिन
विला जाना है
मरूत अप तेज़
व्योम और क्षिति में।

उससे पहले
इनकी साजिशों को
नाकाम कर
महाकाल के पहरे को चकमा दे
हम एकबार
परस्पर लिपटे
निखोज न हो जाते
अनंत अक्षय
एक चिन्मय रति में !!

-:- प्रतिकार -:-

सुनो
एक रात अपने साथ
मुझे गुजारने दोगे।
तुम्हारी गोद में एक रात विताने की भारी इच्छा मेरी
लिखा हुआ है मेरे जातक में
मैं शून्यता को
परिधेय कर पहन सकूँगी
उसी रात में,
कई कई भ्रांतियों
और छलना की वेड़ियों को
मेरी गर्दन पाँव और कमर से
खोल सकेंगी
सिर्फ तुम्हारी उंगलियाँ।

केवल तुम्हारे ओंठों के
स्वाक्षर से
मेरी सारी देह में
ग्रहित होगा
शुद्ध सुखानुभव का
अंतिम प्रस्ताव।

और कभी
या अगले जन्म में नहीं

इसी जन्म में ही
मुझे ऐसी एक रात
पानी होगी।

नहीं तो अदृष्ट ने कहा है
इस पृथ्वी से
मिलन के क्षण गायब होंगे।
और कोई प्रिया
प्रियतम को पाने का सपना देखेगी नहीं।

और किसी लग्न की
परिभाषा होगी नहीं समर्पण।
और किसी आँख के तारे में
अंकित नहीं होगा
ईप्सित तुम्हारा चित्रपट।

और ईश्वर
रतिक्लांत नीद में सो जाने को
बार बार
जन्म नहीं लेंगे मर्त्य में।

ऐसी रात न मिले तो
वंशी से टेर
झरने से छंद
सागर से लहरें
फूल से सुवास
और मेघ से जलकण

हमेशा के लिए शेष होंगे।
और कोई प्रतिकार
नहीं इसलिए तो
तुम्हें ये बात बताई।

बोलो देखें
मेरे जानने
तुम्हारे अजानने में गर घटे इतनी बातें,
तुम उस समय क्या
मुझे दोष न देकर
नीरव रहोगे?

-:- खुद-ब-खुद -:-

इतने दिन...।

तुमने देखी
भोगी मेरी देह।

छू देने से
लजकुरी लता जैसी
मुँद मुँद जाती आँखें
विकच कमल-से
खुल खुल जाते स्तन।

रति बंध में
आलोड़ित मथित
जानू-यौवन
तुमने भोगा मुझे
वधू में वारांगना में
वस्त्र में निर्वस्त्र में
शिल्प में, शास्त्र में
तुम्हारी दृष्टि में
मेरी नग्नता की
कलाकृति में अंतरण की बेला
मेरा खुद को खुद देखना
केवल निषिद्ध न था
था असुंदर

असामाजिक
और अशालीन।

आज पहली बार
मैं खुद को देख रही हूँ
अपने मुग्ध चक्षु भर
देख रही हूँ
कैसे मेरे
आद्या तनु की
लहर लहर में
संतरण करता है
एक व्रीड़ा च्युता मानवी का
प्रकृति रूपी मन।

जननी, भगिनी जाया
देवी या नायिका
या अन्य किसी
भग्नांश में
विभक्त होने को नाराज़।

कविता की
शुद्ध उद्यामता में देखो
मैं गढ़ रही हूँ
मेरा स्वच्छतम
आत्मा अवयव
और नूतन
मेरा निज का
यौन-अनुराग।

तुम्हारे मान-दर्पण में
सती और सुंदरी
दिखी नहीं सो
माफ करो।

आज तो
खुद की आँख से बखुद
अपूर्व दिख रही
मैं ऐसी एक
इच्छामती नारी
वज़ूद का उद्येश्य जिसका प्रेम
और प्रेम का उद्येश्य
अमृम अमृत
केवल
अमृत-सृजन।

-:- प्रेमानुभव -:-

सचमुच क्या
प्रेम होना
एक आकस्मिक बात है?
मुझे तो प्रेम होने...
जरा सा प्रेम होने के लिए
कितनी बातें करनी होती हैं।

उल्का से मरना और
शेफाली से झरने का
अनुभव माँगती हूँ।

रपटिले राह पर
अपवाद का हाथ पकड़
चलना सीखती हूँ।

ओस से स्वच्छता
करका से कठिनता
पवन से सूक्ष्मता
लाती हूँ।

खाली देह तो नहीं
मन हृदय आत्मा से
सभी आवरण खोल
पहनने को

आवेग की धड़ी वाली
समर्पण की
साड़ी बुनती हूँ।

निविड़ नीरवता का
घर बसाती हूँ।
व्यथा से सजाती हूँ।

घड़ी घड़ी
टूट रही
भावों की सूत में
अनुराग को चिरकाल
संजोने की गाँठ देती रहती हूँ।

जानते हो
लम्हे भर प्रेम करूँगी कहकर
युग युगों से
आँखों में माया
ओंठों पर मधु
स्तन में अमृत
जघन में उन्माद
योनि में मृत्यु को
सम्पादित रखती हूँ।

एक वार
प्रेम में पड़ने की आशा में
वार वार
खुद को खुद

भारती रहती
वचाती रहती हूँ।

इतनी बातें खोजवोज कर
सेज सजाते वक्त
आरम्भ होता है
प्रेमिक पुरूष का
लुकाछिपी का खेल

सारे दृश्य अदृश्य के
सीमांत में
कभी मुझे लगता है,
इतने सघन बाहुबंधन
सम्मोहित चुबंन
पूर्णतम रमण
और कोई नारी
पाई न होगी मुझ-सी।

और कभी कभी लगता है
मुझ जैसी किसी ने तो
भोगी न होगी यूँ
चरम रिक्तता !!

-:- मिलन -:-

तुमने
एक नज़र डाली।

मैं भी अंजान में
सिर झुका
देख ली।
चारो आँखे मिली

निमिष भर में
मेरी सारी देह पर
किसी दूर समुद्र गोद से
पछाड़ता आकर
एक बंवडर बह गया।

सूत भर भी
रखा नहीं मेरी देह पर।
आहा, आहा कहते कहते
तिनके-सा
उड़ा ले गया मेरा सजा संसार।

लगा
लौटती वेरा।
ये बवंडर मुझे ज़रुर

खीचं ले जाएगा जबर
समुद्र के अतल तल को।

हो सकता है मेरा
निज का निश्वास
तब्दील हो जाए
इस बवंडर - प्रकोप के
संक्षिप्त सारांश में
बवंडर थमने के बाद
उसे फिर इस देह की
किस शिरा प्रशिरा में
जगह दूँगी !!

सोच सोच रात वीत गई।

सुबह...
फूल छपे चादर पर के
बिछौने पर।
मेरे स्वामी के निद्रित चक्षु
परितृप्त प्रशांत दिख रहे थे।

चाय कप में भाप थी
श्रृंखलित
यूनिफॉर्म पहने बाध्य शिशु-सी।

बवंडर का नामनिशान न था
मेरे बाउंडरी घेरे वगीचे के
पतो में या फूल पंखुरियों में

तो, कल रात का वह बवंडर??
दर्पण में
मेरी विध्वस्त पलकों पर
फिर भी, तुम्हारी नज़र का
कियदंश था।

और मेरी आँखों तले
सूख चुके अस्पष्ट
आँसू के दाग में
बवंडर के मुग्ध मुद्रांकन को
चीन्हा दे रहा था...।

-:- श्रृंगारिचेत् -:-

देखो
अर्द्ध-उन्मीलित
नील कुंई
मेरे चक्षु...।

स्पंदित किशलय
मेरे अधर...।

कोरकित पक्ष
मेरी छाती।
उत्कंठित नदीतीर
दोनों उरु,
उच्छल गंगाजल
मेरा प्रेम।
आद्या प्रकृतिसम
मेरा आलिंगन।

सनातन पुरूष की
अपेक्षा भंगिमा में
ताक रही तुम्हें,
केवल तुम्हें।

क्या क्या घटेगा
जानते हो?

मेरे सर्वांग पर
तुम्हारे हाथ
गुजरें तब
पवन परिणत होगा
चुंबन के अखंड गीत में।
पथहारे पक्षी सब
नीड़ सजाएगें
फूल गर्भवती होंगे।
भूमि के ईषिकार में
पुलकित होंगे चक्रवाल।
नदी की विवस्त्र देह को
समुद्र जकड़ धरेगा छाती पर

क्या दिव्य सुख का ज्वार
उच्छलित होगा जानते हो!
जब पूर्णचंद्र का
घन घन आघात
परितृप्त करेगा अँधेरे को
मुग्ध सुरति में...।

लो बाहु भर उठा लो
ये समर्पण।
पत्थर न हो जाए
कोई मिथुन मुद्रा।
स्वप्न में स्वप्न में
बह न जाये
किसी का अमृत - रमण
शब्द सर्वस्व न हो
तुम्हरा कवि - पन...।

-:- विषकन्या -:-

कभी सोचा है
सुख का संबल कहने को
दो तीन पुरानी चिट्ठी,
जीवन कहने को
कहीं जाने कितने युगों पहले
वीते कुछ पल
निश्वास कहें तो
मिट चुकी एक
चुंबन की सुगंध
और प्रेम कहें तो
अवशिष्ट संध्या सब
हाहाकार को ले
एक नारी कैसे जीती है?

पत्थर पलटे ह्रदय में
किसकी प्रतीक्षा की चोट
मुँगरी सी पड़ रही होती है ठ्क ठ्क।

दुख की शिल्पी फिर भी
एक रूप-खोल नहीं पाती
प्रियतम का...।

आवेग से झुलसी फूल-पंखुरी पर
छींटने को

बूँद भर पानी नहीं होता आँख में
देवता रहते अनगढ़
व्रत असमाप्त
उपचार अचाहा हो जाए

तुम कैसे समझते इतनी बाते !!
वह फूल का हो या रत्न का
तुम्हरा तो चिरकाल
अखंड अधिकार सिंहासन पर।

पलायन को प्रीति कहकर
जिन्हें उल्लू बनाने में
तुम उस्ताद।

कदम बाहर धरते ही वही
सोलह सहस्त्र निर्बोध किशोरियों की
छातियाँ बिछ जाती हैं
तुम्हारे कदम तले।

कुछ अभाव होता तब ना समझते
बूँद भर भाव की अमृत आशा में
जनम पर जनम एक नारी
कितने सर्पाघात में
विष को पी पी
जीती रहती है !!

-:- विप्रलंभ -:-

तुम मेरा
एक अपार्थिव दुख
होकर रहो।

और जगत में
इससे ज्यादा सुख
कुछ नहीं
बीच बीच में
याद कर लिया करो।

और किसी प्राप्ति कि अप्राप्ति सहित
तुम्हें भला क्यों जोड़ूँ ?
तुम्हारे सिवाय, ये संसार
फ़िज़ूल होने के बाद
संसार के लिए तुम्हें
किसलिए ढूढ़ूँ?

आज तो मेरे लिए
तुम्हारी आँखे नहीं
ओंठ नहीं
अवयव नहीं।
फिर भी
मेरे चारों ओर की शून्यता में
तुम्हारे मधुर चुंबन

और निविड़ आलिंगन सिवाय
और कुछ नहीं।
इस अपूर्व संगम का
तीर्थजल छोड़
क्या गर्ज मेरी
किस सड़े कुँए के पानी में डूबूँ?

खाली जरा
जन्म जन्म के हीनपन से
जुबान से लड़खड़ा जाती हूँ
कब कौन सी असुंदर बात।

पर किस कोमल करूणा से
तुम ताकते हो मुझे।
चरणामृतधारा सा
आँखों से झराते हो आँसू

आहिस्ते
धो धाकर
मेरी देह से पोछं पाँछ लो
जितनी हैं इच्छा अनिच्छा की व्यथा।

-:- तुम-सा -:-

एक महाघोर शोक के प्लावन में
बहा देने के पहले
तुम्हें क्या मालूम नहीं कि
शत चेष्टाओं के बावजूद
मैं तुम-सा शोकातीत
हो नहीं सकती अपनी जीवद्‌शा में

स्नेहपन या निर्दयपन में
तुम्हे अतिक्रम कर जाने के संकल्प में
बाहें उठाते उठाते
मैं दिन ब दिन
निश्चिन्ह होती रहूँगी
तुम्हारी उसी उसी
निर्दिष्ट भूमिका की महिमा-भीतर।

सबको अपने-सा क्यों सोचते हो?
क्यों इच्छा करते हो कि
सभी तुम सा
विभिन्न विरोधाभास के
सेउर लगे पत्थर फाँक में
अपनी इच्छा मुताबिक
दृश्य या अदृश्य होकर
चलाचल कर सकेंगे

कछुए की तरह
अवलीला में!

क्यों मान-लेते हो कि
सभी आँखें
आँसू को क्षीराब्धि कर सकेंगी
और तुम-सा
वहाँ सो सकेंगी निश्चिंत।
तुम-सा
सभी क्या
नदी पार कर सकेंगे
बिना नाविक या नाव के?

तुम्हारी कविता के
कुछ मार्जित शब्द में
रूपांतरित न हो पा रही
रक्तमांस की एक आकुल नारी मैं
मुझ में
छोटे छोटे इंसान की
पोषे आशा अंजुरी भर आर्त्त
थोड़े से अनेवने सपने
मुट्ठी भर में
जितना रहा उससे
संतुष्ट मैं,
उतने तत्व और दर्शनहीन
आँसू या हँसी में।

उसी भीतर
तुम्हें एक बार देख लेने पर

जाने क्यों
कोटि निधि पाने सा लगे ।

मुझे ब्रम्हज्ञान की
दरिया बीच धकेल
खुद अंतर्धान हो जाते हो
बार बार
कहना जरा
किस यश के लिए ?

-:- अंतिम रमण -:-

समुद्र की
उच्छल लहरों में
लथपथ हो जाऊँ,

ऐसी तो
इच्छा न थी
मेरी...

वेलाभूमि पर जहाँ
जहाँ इच्छा वहाँ
लहरों का
दायित्वहीन आलिंगन।

निश्चय मैं खोज रही थी
जल थल आकाश में
पाँव भर आस्था की भूमि।

सहस्त्र व्रत की
निष्ठा में
जहाँ मैं
उद्यापन कर सकूँ
जन्म जन्भ का मेरा
अस्थिर अन्वेषण।

न उत्तेजना
न वेपथ

टलमल होती हो
वह भूमि।

तितली के डैने सी
काँपती न हो
मेरी पलकें।

अवारित
झर रहे
आँसू के एक वस्त्र से
देह संगम में
डूब सकूँ मैं

सागर संत्रस्त
खिसक जाता हो
देखकर वह
अद्भुद तीर्थस्नान
मैं होती
निश्चिंत
ध्यान मग्न
ऊर्ध्वबाहु
तपस्विनी सी
एक पाँव पर मूर्त्तिमान...।

परम आत्मियों के
अधर संलग्न
अटूट मिलन के उस
चिरंतन भास्कर्य में
भेदाभेद न होगा
भाव का

तपस्या?
या अंतिम-रमण??

-:- उधार रहा -:-

इस बार
तुम्हारे ऊपर मेरा
उधार रहा कुछ सुख।

तुम्हें
मेरी देह के
गहरे से अधिक गहरे को
संग बुला लेने की इच्छा।

निषिद्ध द्वार में
तुम्हारे घन घन
आघात से सृष्ट
मूर्च्छित आनंद का
अनुभव।

तुम्हंरी आतुरता को
मेरा
अनावृत पन
समर्पने का समाहित-भाव।

यह सब
बाकी रहा तुम पर।
चुकाने का वादा करने में
तुम कुंठित हमेशा।

फिर भी...
कभी अगर
और एक बार ...

तुमसे भेंट हो जाए
किसी अनामिका ऋतु की आखिरी तारिख में।
तब शायद
तुम्हें समझा दूँगी
सूद मूल के साथ
ऐसा कर्ज़ चुकाना
होता है कितना
दुर्जय मादक।

-:- अतिथि -:-

(1)

एक दिन उन्होंने
'रासेश्वरी' कहकर बुला दिया

शायद
संबोधन में जरा
अदल बदल के लिए

इतने से
यूँ बदल जाती है पृथ्वी??

सघन शालवन को
बाँधा जा सके दो बाहु में
तो दिग्वलय सरक आए
एकदम ओंठों के पास?

किस अजाने स्नेह की
महक से गमक रहा मेघ
बरसने से पहले भी
लथपथ कर दे माटी को?

शब्द एक बदलने के बहाने
संसार को बदल सके इसलिए न
मैं सब छोड़

झूरती मरती
उसी कवि के लिए !!

(2)

अभाव में रहते समय
कहीं कुछ माँग न दें सोच
रहे क्या दूर खड़े?

सुनो
मेरे मागँने के भय से
इस तरह यूँ कुंठा के समुद्र में
न डूबो
जरा निरख देखो
इस पृथ्वी में
फिर भी कोई तो एक है
जिसका तुमसे
कभी कुछ देने पर भी पाना नहीं है।

क्या देते भी तुम !
जानती हूँ मैं
इस कुंजवन का ठिकाना
भूलने का अभ्यास करती बेर
तुम्हें अब से कितना कंगाल लगेगा।
मुझे दृष्टिपथ से
पोंछने बैठो तो
चारों दिशाएँ अँधेरी दिखेगी।
और मेरा कंठ स्वर
न सुनने का संकल्प करती बेरा
सारे शब्द तुम्हारे लिए अर्थहीन होंगे।

मेरी नीली साड़ी के आँचल के
अच्छादन बिना
हर बार दर्पण आगे
तुम्हारा निष्ठुर पन
नंगा हो जाएगा।

फिर भी तुम
उस वाट जाना
जिस बाट
लौटने के पगचिन्ह कभी पड़ते नहीं।

अभाव में उसी दिग्वलय पथ में
मुट्ठि भर धूल होने पर तो
मैं रासेश्वरी हो पाई

अपने ढेरों अभाव को
मुझ पर फेंक
हल्के हुए इसलिए न
संपन्नो के लिए भावग्राही पुकार बने

(3)

छूते न छूते
रुक क्यो जाते हों?

पास आओ
और पास
हृदय तो छू चुके कब से
अब इस देह की
पंखुरी पंखुरी तोड़ लो।

हे मेरे शारद आकाश,
तुम्हारे स्फटिक विस्तार तले
मैं पद्म-सी खिल उठी देखो
और तो तन में
ग्लानि अवसाद कुछ नहीं
खाली सार्थकता के
चरम महूर्तों के लिए
प्रतिक्षा है।

एक बार
आत्मीय मधुमक्खी होकर
मेरे गर्भ केशर को छू दो।

क्या जाने कितने जन्मों से
किस दिव्य विस्फोरण के लग्न की
अपेक्षा करती है एक नारी
किसके स्पर्श से
दहल जाए उसका
तथाकथित ब्रम्हांड
फट दो टुकड़े हो जाए
उसकी सत्ता।

जितना जो भी असुंदर
टूट धूलिसात होता है।
स्वप्न के फॉसिल हो चुके
असंख्य सुंदर अनुभव
नये रूप धरे फिर
जीवन्यास पाते हैं।

सिर्फ एक अंगुली छुअन से
ध्वंस और सृष्टि के

एक मधुर सामर्थ्य रंग से
आवेग की तूलिका डुबो ·
आँक दे सकता है जो
जीवन से अधिक कमनीय एक छवि-

वह तो स्वामी या प्रेमी नहीं
समस्त अधिकार शून्य
स्नेह के समुद्र से
उठ रहे सूर्य सा
एक कवि
केवल एक कवि

(4)

कल स्वप्न में देखी
तुम मुझे दे रहे थे
अयुत चुंबन

स्वर्ग से पाताल और
नर्क से अमरावती
विक्षुब्ध समुद्र से
सघंन अरण्य...।

उलट पुलट कर
तुम्हारे ओंठ
मेरी देह के अनाघात अणु अणु
मेरी आत्मा का उद्भिन्न यौवन ।

हम दोनों अन निश्वासी हो रहे थे,
फिर भी

तिल भर शिथिल हो नहीं रहा था
हलाहल से तेज़
पाप से अँधेरा
और मृत्यु से प्रगाढ़तम
तुम्हारा निविड़ आलिंगन।

मेरी कामनाओं से अधिक
नीलतर दिख रहा था
तुम्हारे अधरों का अधीर दंशन।

चुंबन से चुंवन से
मेरी जाँघ और नितम्ब में
पहना रहा था मर्कत-मेखला
तो सद्य अपराजिता माल से
मंड रहा था मेरे दोनों स्तन।

तुम्हारे आवेग का क्रम जान
सर्वांग धुलकर
बह जाते जाते
छिन भर अटक रहा था
मेरे स्तन वृंत पर जब
तुम परिहास करते
-देखो देखो
कैसे बूंद भर ओस हो
तुम्हारी छाती पर चिपका है
मेरी प्रीति का अंतिम आश्विन।

नींद टूटी
मैं साबूत भींग गई थी

पसीने से, आँसू से
तुम्हारी निष्ठुरता को चकमा दे
और एक हाहाकार दग्ध रात
मुझसे विदा माँग रही थी
रतिक्लांत मुहुर्त के सजल स्नेह से।

(5)

और मैं स्वप्न नहीं देखती
और कविता नहीं लिखती।
अब चारों ओर खूब चुप्पी
तुमने तो चिट्ठी एक देने को
मना कर दिया
अब कैसे कट रहा है दिन
आगे क्या होगा
वह सब मैं कुछ भी नहीं सोचती।

कविता छोड़
अन्य कोई भाषा
तुम समझ नहीं पाते इसलिए तो
कविता के छल से
मैं तुम्हारे पास चिट्ठी लिखती!
तुम्हें चिट्ठी एक
लिखने के सुख में
मैं सारे संसार को
किसी कोने खिसका देती।
और कोई आत्मीय-अनात्मीय
हैं मेरे-
इस बात को पूरा भूल जाती।

कितनी कंगालन मैं
कुछ तो देने को नहीं होता

जीवन भर के
आहत अनुभव के
तीक्ष्ण कांटों में
आवेग का सूत-छोर जोड़
प्राण की कोमल आशा के
फूलों को बींध बींध
तुम्हारे लिए गूँथने बैठते समय
मेरे अजाने
वह कविता हो जाती

टीप से कुछ झरते लहू
कुछ आँखो से बह जाते आँसू
मैं सब पोछं पाँछ देखते समय
वे मेरी कविता के
शब्द में बदल जाते।

तुम्हारी प्रियतमा होने की
योग्यता न होने पर भी
मैं चाबी भरा खिलौना
कि किसी समाधि का नामफलक नहीं,

मैं एक नारी हूँ
जिंदा हूँ तुम्हें चाहा है
ढूँढा है और कभी कभार चिट्ठी लिखी है
यह सोचने से
छाती में सचमुच कितना
दम्भ आता है !!

(6)

तुम्हारे लिए झूर झूर
रात दिन के कम पड़ती बेर
तुम्हारी राह देख देख
आँखे न थकती बेर
नहीं आए न सही
पर जिस दिन
ये झूरते देखना सब
शेष हो जाएगा,
तुम्हें मेरी कसम
खबर मिले अगर
जरुर आना।

तुम्हारे पहुँचने पर
हर बार की तरह
तुम्हें स्वागत कर लाने को
मैं उस दिन और
तुम्हारे पास दौड़ी जाऊँगी नहीं।
वह आँख भी
खुल पाती न होगी-
तुम्हें जरा देखने के
अनंत स्वप्न लिए
गंभीरतम नीदं में
जो आँख पड़ी होगी सोई।

हँसी या आँसू
बातें या कविता
किसी का कुछ दयित्व न होगा

उस दिन मुझे तुम्हें
चीन्हा देने का।

सब से बड़ी बात
निरी जमीन पर
अभिषिक्त हुई
मेरी राजेंद्रानी अदा के सामने
सब की भृकुटी
झुकती होंगी
और तुम्हें भी
भारी हल्का हल्का
लग रहा होगा कि
-आज और किसी से
डरना नहीं है।

और सुनो
सको तो ये एक बात रखना
मेरे लिए
नई नीली साड़ी एक
खरीद लाना
महाकाल की लहरें
बहा लेते वक्त
और लाज क्या
संकोच क्या?

अन्य सभी आभूषण
खोल
अपने हाथों
मुझे वह साड़ी पहना देना।

कितनी छोटी सी मैं !
तुम्हारी एक बाहु को
भी कम होउंगी न।
बाँस या टिकटिकी
यहाँ तक कि कंधो पर भी नहीं,
मुझे ज़रा
गोद में लिए
उस पार पार कर देना।

(7)

जाने को तैयार हुए जब
और क्यों पलट देखते हो पीछे?
माँगी इसलिए तो
लौटा रही हूँ सब।
एक चिट्ठी के लिए गिड़गिड़ाना
जरा संग के लिए पीछे दौड़ना
न आने पर रूठ बैठना आदि
सभी निष्पाप सुखों को
लौटा चुकी मैं अब।

तुम्हारे नजदीक
जिद्दी होने के अधिकार को
कब से बिदाई दे चुकी।

और क्या बाकी रहा कि
इतना मुड़ मुड़ कर देखते हो?
मैनें तो आश्विन को लौटा दी
हरसिंगार की सुगंध
रात को लौटा दिया पूनम चाँद
समय को लौटा चुकी जीवन।

तुम्हें पाने के बाद
जिससे जो माँग लाई थी
आज तो सभी को
सूद सहित लौटा रही सब!

कसम से
तुम्हारे मिट रहे पादचिन्ह से
मुट्ठी भर धूल सिवाय
और कुछ बाँध रखी नही
मैं अपने आँचल में।
कहोगे तो
उसे भी खोल
झाड़ झूड़ दूँगी
इस जीर्ण आँचल से।

बस तुम
सुख से रहोगे ये
मुझसे वादा कर जाओगे तो !!

(8)

तुम्हें ढूँढना
पाना खोना
और फिर ढूँढने का
खेल खेलते खेलते
समय मालूम होता नहीं
जन्म पर जन्म जाता है बीत।

बेशुमार धूप
अनगिनत तारों भरी रात।

वर्षा की आर्द्रता छुए मुझे
छुए फिर वैशाख की ताप।

पकड़ में आते आते
बसंत खिसक जाए उंगली फाँक से
निर्जन अभिलाष के भार से
फट जाए शरत की छाती।

ठीक पृथ्वी सी मेरी देह
सव सहे।
कौन सा रंग तुम्हें
अधिक पसंद है
न जान कर
अदल बदल कर
पुलक और विषाद की
हरी-धूसर साड़ी बदलती रहती हूँ।
ये दो ही तो
पुरानी साड़ी मेरी...।

वहुत इच्छा होती है
वह सब खोल फेंक कर
पगली सी
अद्भुत नंगी हो जाती !

शायद तुम
दौड़ आते विकल हो
मेरी ये अवस्था
और कोई न देखे सोचकर
शायद तुम बाहों से लपेट लेते मुझे
समझा बुझा कर

हो सकता है तुम
पहना देते एक साड़ी
रंग जिसका नील-रास-रात।

पर वैसा कुछ कर नहीं पाती मैं
तुम ताकते रहो दसों दिशाओं से
देखते रहो मेरी नग्नता
परखते रहो मेरा आवरण।
एक पल गोद में उठा लेते हो तो
दूसरे पल कहते हो
-और भी अपूर्ण है तेरा समर्पण ।
जानती हूँ सच जानती हूँ
तुम मुझे जरा भी चाहते नहीं
बस तुम चाहते हो
ये मेरा छटपट-पन।

(9)

मैं अब
तुम्हें करीब करीब भूल चुकी
तुम्हारे दिए दुख सुख
भरपूर भोगने के आनंद भीतर।

किस दिन मिली थी
तुमसे पहली चिट्ठी,
कब तुम्हारे साथ
पहली भेंट हुई थी
कब मेरे ओठों पर तुमने
दिए थे प्रथम चुंबन,
कब लिखी थी

मेरे लिए प्रथम कविता
यह सब कुछ और
याद नहीं आता
इस जन्म की शेष रातों में
तुम्हारे लिए तिल तिल
मरने के छंद भीतर।

हर निमिष में
मृत्यु की शीतल स्तब्धता को
नई नई साड़ी-सी
विभिन्न ढंग से
पहनते समय
तुम तो दर्पण बन
मेरे आगे खड़े होते हो
मैं क्या सुंदर दिखती हूँ उस समय !!

कितने स्नेह से समय
तुम्हारे विरह का अतर ज़रा
और एक बार छींटता है मेरी देह भर;

मैं आँखे मूँद लेती हूँ
तुम्हारे न होने की उसी
पुलकित सुगंध के भीतर।

(10)

तुम्हारी सारी सतर्कता के बावज़ूद
मैं क्या जान नहीं पाती सोचते हो
एक के बाद एक
दरवाज़े उढ़का कर
तुम्हारा चला जाना धीरे-धीरे।

तुम्हारी छाया भी
छू न पाऊँ जहाँ
उसी अँधेरे भीतर की
राह ले जा रहे हो मुझे।

बड़ी निष्ठुर नीरवता की
धारदार दराँती से
मेरे आँचल में पड़ी
अनुराग की एक एक गाठं काट रहे हो
कितनी सावधानी से दे रहे हो
अपने मृदुतम, मधुरतम
और निर्ममतम आघात
प्रेम के दुर्जय नशे में
मुझे अचेत करने के बाद ।

पर मेरी छाती भी
किस उपादान से बनी क्या जाने
वहाँ पत्ता एक खिसके तो
बवंडर बहे
पखुरी एक झरे
ढेंकी प्रहार सा सुनाई दे।
स्मित मुस्कान दे कर
जितना रूँधो भी
पकड़ में आता है दीर्धश्वास।
चेताशून्य आवेग
गाढ़तम होते समय भी
पाकर न पाने की दो-धारी
तलवार पर पाँव रख
उपस्थित रहती है मेरी चेतना।

इससे
मै खंड खंड हो
मारी न जाती कैसे
तुम्हारे दूर होते जाने की
इस धारदार निशब्दता में !!

मेरे रक्तात
बचे खुचे के लिए यत्न कर
अपने जाने या आने का
हिसाब रखना।

प्राण देकर प्यार करती हूँ इसलिए तो
बेफिक्र खेलने के लिए
मारने या तारने के लिए
आत्मा के सकल साहस और स्वाधीनता को
अकुंठ बिसर्जा तुम्हारे पाँव में

नहीं तो
एक बार घर से पाँव बाहर निकालने पर
मुक्ति और पलायन का
कौन सा पथ अगम्य था
मेरे दुस्साहस और दुरभिलाष के सामने??

(11)

कोई जानता न होगा
तुम पर मेरे
स्वतंत्र अधिकार के सबंध में।

जाते समय
बुला बुलाकर सहेजोगे सब को

जिससे जो उधार होगा
चुका दे रहे होगे हड़बड़ी में।

स्थावर अस्थावर का
हिसाब समझा रहे होगे
स्त्री-बच्चों को,

किसी को माफी
किसी को आशीर्वाद
रो रोन्ही विदाई लेने की भंगिमा
खिल रही होगी
किसी अंतरतमा के सामने।

कहीं किसी का पावना
बाकी न रह जाए सोच
परेशान हो पलटते होगे
जीवन के पृष्ठ
मूल से
शेष तक
और एक बार।

तुम्हारे इस तरह
तत्पर और अन्यमनस्क समय में
मैं जा खड़ी होउँगी सामने
एकदम तुम्हारी देह से सटी
सबके अलक्ष्य में।

इंटेसिव केयर
डाक्टर की ताकिद

और तुम्हारी नहीं नहीं को
बेखातिर कर
माथा टिका
तुम्हारी विपुल छाती में ।

तुम एकाएक भयभीत होगे
- क्या करोगे
मैं अगर इस शेष समय
कुछ लेन देन की बात करूँ !
और तो कुछ
बचा नहीं तुम्हारे हाथ में !!

मैं लेकिन
मेरे पूर्व अधिकार से
खाली तुम्हें सुनाई दे यूँ कहूँगी
-सोना हो तुम ! मेरी छोटी बात मानों
इतने दिन विदेश से
घर लौट रहे हो,
क्या खाली हाथ
जाते हैं यूँ?

और तुम्हारे कुछ
ज़वाब देने के पहले ही
मैं अपने को रख चुकी होऊँगी
बंद हो रही
तुम्हारे हृदय की मणि-पेटिका में

(12)

जाओ जाओ
प्राणभरी प्रीति की इन

उच्छल लहरों में
मैंने मिटा दिए आज
मन की समुद्र-बेला बालू से
तुम्हारे पंग चिन्ह।

आवेग के इंद्रधनु से
छाती के आकाश में देखो
लिखा वेदना का
सातरंगी शब्द एक
विदा... विदा...।

तुम्हारे मेरे संबंध भीतर
जितने भी सुख
वे सब केवल तुम्हारे।

जितना दुख मिला है
वह मेरे निःस्व जीवन का
महार्धय पाथेय।
जितने आँसू जितने दीर्घश्वास
वह सब मेरा एकांत निजस्व
तुम्हारे लिए कोई अभियोग नहीं
तुम पर कोई अधिकार नहीं।

आज से
मेरी इच्छा के पिंजरे से
खुशी खुशी मुक्त कर दी
बोलते पक्षी-सा
तुम्हारा वह निष्पाप और सुंदर हृदय।

कसम से
इतने कम दिन में

इतने सुख दिए
विश्व सिरजने के दिन से
ईश्वर भी देगें नहीं उतने।

अकेली मेरे
पराए होने के विनिमय में
तुम्हारे सारे अपने
सर्वशुभ से रहें
मेरी आयु मिले उन्हें
उनके रोग व्याधि
झाड़झूड़ दे मुझे।

कहीं कोई अमंगल
घट न जाए सोच
अपना शेष संबल जरा-सा
बूदँ भर आँखो का पानी
ये देखो पोंछ दी
प्रार्थना और प्रणाम मिलाकर
चिर दिन के लिए माथा नवा
हाथ जोड़ दी।

और कुछ द्विधा, द्वंद्व
ग्लानी या अफसोस
मन में न रखो,
खाली तुम्हारे लिए ना
हर शून्यता मेरी
आज इतनी अनुरागभरी
हे मेरे मुहर्त्त के
परम अतिथि

हे वांछिततम!
क्यों बैठे हो मुहँ झुका?
उठो उठो जाने की वेला आई
इस जन्म में और भेंट होगी नहीं
विदा... विदा...

(13)

जाते समय कह गए
रोना मत, रोने से मेरी
आयु कम होगी।
कहते कहते
कितनी बड़ी बात कह गए?

जरा सोचा नहीं
तुम्हारे पास न होते समय
इसी आँसू को तो
आसरा करती हूँ मैं !!
मेरी छाती को हल्की कर
ओठं गाल सहला
यही आँसू बूँदें ही तो
सुलाती हैं मुझे !!
इन्हें आने को
यूँ कसम देकर मना कर देने से
ये हतभागिनी फिर
कितने जनम अनिद्रित रहेगी!!

सहज ही मेरे कपार में
और कुछ पाना तो नहीं है।
तुम भी इतने निष्ठुर कि

जरा सा प्यार करो तो
उससे सौ गुना अधिक
भूल जाओ।
जो हो उसी अल्प समय में
जरा भी न सूखने वाला
आँसू का निर्झर एक
निराशादग्ध मेरे रूखे हृदय में
खोल दिए होते हो।

धीरे धीरे
स्मृति के हरितिम लता-पत्र में
मेरा दुख श्यामल हो उठता है।

तुमसे दूर रहना
और नहीं पिराता
जब इच्छा उस समय
उसी जलाधार की
मुग्ध सेज को देख लेने से
तुम्हारा चेहरा वहाँ
स्पष्ट खिल उठता है।

मैं तो उतना पाकर
कितनी सुखी होती हूँ
वह तुम कैसे समझोगे
न सही अब
तुम्हारी बात रहे।

मेरी आँखें सूखी रहें
और मेरे आँसू टलमल

आयु के बिंदु बिंदु
तम्हारी आयु के साथ
जुड़ जाएँ।
शायद मेरे सुकृत हों
कितने जन्म जन्मांतर के
स्वप्न सफल हो जाएँ।

इस तरह प्यास में प्यास में
प्राण छोड़ जाते समय
तुम आकर
शेष अंतिम जल बूदँ एक
मेरे कंठ में दे देना।

(14)

कि तुम खूब जल्दी चले जाओगे
ये बात मैं अच्छी तरह जानती हूँ।
और मैंने कभी भी
कल्पना नहीं की
कि काल काल के लिए
मैं तुम्हे बाँध रखूँगी
बाहों में अपनी

सजल मेघ सा
मेरे पिपासित सर्वागं को
छू छू
जो आज पल्लवित
कुसुमित करे
वह क्या खाली

तुम्हारा ये नाम परिचय वाला
सुदीर्घ शरीर?

वह तो तुम्हारा
अनुपम सुकुमार पन।

वरद देवमूर्ति रूप में
मेरी कातर सत्ता के आगे
प्रत्यक्ष होने के लिए
कौन जाने कितनी बार धँसी होगी
उसकी देह में व्यथा की धार।

दुख के किस आघात ने
गढ़ा होगा उसका
सुढल माथ।
नासा, कर्ण, भ्रूलता, अधर
इतना स्पर्शक्षम कर
रचा होगा कौन सा अवसाद

शेष में
किस विपुल निराशा हाथ
पाए होगे तुम चक्षु दान।

इसलिए न
इतने स्निग्ध अनुराग में
तुम छाती को सटा लेते हो

मेरी अश्रुसिक्त पलकों पर
यूँ कोमलता से

तुम ओटं रखना जानो!!
कवि मेरे
प्रियतम ओ अतिथि मेरे,
आत्मा की बूदँ बूदँ आँसू में
हृदय डुबा
तुम जो कविता लिख रहे हो,

मैं तो कभी उसका
शेष शब्द होना चाहती नहीं।

वरन मेरा प्रणाम लो
प्रीति लो मेरा सर्वस्व लो
पत्थर पाथेय कर
मेरी विदा लो,

जाना हो अगर
और आगे
बाकी हो जिस समय
बाट बहुत दूर।

(15)

एक दिन
स्वयं ईश्वर
मेरे आगे आ
हाज़िर हो गए।

और बोले
जो इच्छा माँग ले आज

मैं केवल
'तथास्तु' कहने
बैकुंठ से उतरा हूँ
आज का दिन ये
तेरे जीवन की शेषतम तिथि।

'सच'!
मैं चौंक गई बोली
तो फिर हटो ..हटो
और रास्ता रोक खड़े न हो।

स्वप्न या जागरण का
रथ चढ़कर
आज आते होंगे जरुर
मेरे प्राण के अतिथि।

-:- सत्यसिद्ध -:-

तो फिर सब झूठ !
किशोर आँखो में सम्मोहन
तरुण ओठ का गीला-पन
प्रेमिक छाती का स्पंदन

सब भ्रांति
सब अवास्तव!

केवल सत्
स्थावर अस्थावर का
जोड़ भाग !
अगर झूठ है
निष्पाप भावप्रवणता।

संन्यासी का सुख
संमर्पण की स्वच्छता
निःशर्त्त सम्वेदना
प्रेम की आवेगमयता।
तो क्यों
बार बार
नजदीक आते हैं
ईश्वर
हरसिंगार डार
बात मान
खिला देती फूल!
मेघ

साक्षी होता मिलन का
समुद्र और चाँद
मुझे देख
आरंभ करते बातचीत

क्लांत श्रांत होकर
निराश में त्रिभुवन
घूम आने के बाद।

मैं क्यों तलाशती हूँ
कहाँ मेरे लिए
सजी होगी एक नामहीन
संपर्क की सेज।

उदार आलिगंन का
झरना एक होगा
धोने को मेरी देह की
मेरी आत्मा की
सकल तुच्छता।

दृष्टि से हृदय की
ज्योति बुझ जाने पर
शायद जरुरत हो
विषय बुद्धि की वैशाखी।

तो क्या इसलिए
कविता झूठ हो जाएगी !

झूठ हो जाएगी
सकल
महिम्न चेतना की
व्याप्ति और उच्चता !

-:- बंधन -:-

भूलना चाहते हो यदि
भूल जाओ...।

हमारे श्यामल
समाहित संपर्क की
फूल सी खिली बातें
शिशिर स्नात नीरवता।

भूल जाओ उसे
प्रतिज्ञा, प्रतिश्रुति
और प्रतिवाद वलय से
विच्युत
कोमल समर्पणों को
बार बार तुम्हारे लिए
गर्भ में धारण किये थे
जिसने दुस्साहसी व्यथा।

भूल जाओ
एक दिन किसकी
प्राची सी आँख में
तुम्हारी रात बीती थी
नैवेद्य से स्तन को
तुम्हारे ओंठो ने छुआ था।

तुम्हारे स्पर्श से
पुष्पिता-व्रतती-सी
तनु को जकड़
कैसे अनुपम सुगंधित
क्षण सब
तोड़ लिए थे।

भूल जाओ कभी
निविड़ संवेदना के
बलिष्ठ बाहु बंधन में
पूर्ण यौवनित सुख के
अनावृत्त मुहूर्तों को देख
विभोर हुए थे।

सबके आदरणीय
गतानुगतिक एक जीवन
जीने को
भूल जाओ
ये सब एक दिन
तुम्हारा था।

संसार हल्का हो
तुम रास्ते पर आए
हो भले
ज़रा देर से ....।

मेरा अच्छा बुरा पूछो मत।
मैं तो चिरकाल से
यही छोटे छोटे

आल्हाद के
कोमल सूत सिरों को
वेदना की गांठ दे
जोड़ती रहती हूँ ....जोड़ती रहती हूँ।

केवल इस निष्ठुर समय को
निमिष भर बाँध लेने
प्रेम डोर में

-:- धूप छाँव -:-

कभी कभी
तुम्हारे प्रेम से
तुम्हारे मिथ्याचार को
मैं ज्यादा चाहती हूँ।

जब
तुम मुझसे
न पहचानने जैसी बातें कहते हो,
घर के पते
चिट्ठी न देने को लिखते हो
फोन पर बात करने को
मना करते हो, भेंट होने से
मेरी देह के
जरा भी न छूने के
संभ्रम में हाथ जोड़ते हो।

उस समय
मेरी चकित सत्यानुबंध आत्मा
तुम्हारे छल की
अभय बाहु छाया तले
और एक सूक्ष्म कोमल
सत्य प्रत्यक्ष कर रही होती है

मैं देखती हूँ
तुम्हारे प्रेम का आसरा कर

मुझसे अधिक शरणापन्न
और कोई है।

तुम्हें भरोसा है
मैं जी सकती हूँ
विरह को गांठ-धन कर
वे शायद न सकें
क्षण भर भी तुम्हें छोड़।

उन्हीं का मुहँ देख
प्रेम और करूणा से
लथपथ तुम्हारा प्राण
मुझसे छिपता रहता है
सिर्फ झूठ मूठ।

अंगीकार और अनुराग की
तुलादंड-से
तुम ढलते रहते हो
जरा इधर
तो जरा उधर।

संसार के
सारे छैल नागरपन
कितने मलिन उसके सामने !
तुम्हारे इस
ललित कारूण्य की धूप छाँव को
एक बार जिसने देखा है !!

-:- स्वर्ग सुख -:-

तुम्हारी
खूब याद आती बेरा
मैं मेरे मन को
मुझसे अलग कर देती हूँ

उससे कहती हूँ
धूलिसात हो
नदी मे डूब
तेरी आँखे जिधर खींचती हैं
उधर जा भले ही
जितनी जल्दी हो पहुँच जा
तेरी बाट ताकते
जहाँ
मुहँ झुका बैठे होंगे वे।

किसी से कह न पाते होंगे कुछ
सहस्त्र कोलाहल की
सुई नोक में टीप फूट जाने पर भी
कितने यत्न से
तेरे लिए छिपाकर गूंथते होंगे
तन्मय प्रेम की एक माला।

विभोर आलिंगन की
अम्लान एक साड़ी

तुझे पहनाने
उद्यत होती होंगी उनकी बाँह।

तेरी क्षुधा तृषा के
उंपशम के लिए
निविड़ मधुर चुम्बन
भर रखे होंगे
प्राण की रत्नथाली में

तुझे सुलाने
सजा रखे होंगे
विरह का पलंग
व्यथा की कोमल सेज
और दीर्घश्वास से
चित्रित चामर।

तेरी आँख वहाँ
खुद ब खुद मुँद जाएगी
जहाँ
जन्म जन्मांतर की अनिद्रा
मुक्ति पा जाती है।

कितने वड़े स्वर्ग सुख पर
अधिकार है तेरा ।
तुझे इस
छटपट तुच्छ देह से
बाँध रखने को
मैं भला कौन !!

-:- जाते वक्त -:-

कोई भीड़
सजाए जाए
कोई नीचे
मुहँ झुकाए।

पर कुछ
कहूँ कहूँ होते
कह न पाकर
ओठं पर पँखुरी भर
अधकही बात लिए
सीधे चले जाने का दंभ
किसी किसी का ही होता है
हो सकता है उसी जरा सी बात भीतर
छिपा हो आकाश का सभी नील,
समुद्र की सारी लहरें
और रात का तमाम अँधेरा

कहे आधे में होता है प्रेम
तो अनकहे आधे में समर्पण।

झरा एक पत्ता
पग पग व्यवधान में
पीछे पीछा कर रहे पवन को

कैसे स्नेह से समझा रहा होता है
कविता का अधपढ़ा व्याकरण

जाते वक्त
सभी हाथ खाली खाली जाते हैं।

कितने कौशल से
मुट्ठी भर अनुच्चारित शब्दों में
एक वही छिपाए लिए जाए
ब्रम्हांड भर का प्रभुपन!!

-:- कोई एक -:-

कोई एक
कहीं है
इसलिए न
पवन में आश्वासन बन तिर आता है
उसका दीर्घश्वास
और मेरे
बिखरे कुंतल
सहला दे जाता है...।

कोई एक
स्नेह का तालपत्र
ढाँक रखने से न
आज तक
सजल रह सकी है
मेरी पलकें !

कोई एक
मुझे झूरता है।
इसलिए
इतना भरा भरा लगता है
गले में भात-ग्रास
अटक जाते समय।

कोई एक
कहीं न कहीं

अपनी छाती के
निभृत कोने में
लिख रखा है
मेरा नाम...।

सब लेन देन चुकने पर
मेरा कहने को
बस उतना।

साथ लेने को
एक बार याद दिला दोगे न
मेरे यहाँ से जाते समय...।

-:- कविता पास हो तो -:-

सबके आने के बाद
जिसे आना होता है
वह कविता है।

सबके जाने के बाद
जो रुकी रहती है पास
वह कविता है।

कविता पास हो तो
हरितिम उन्मादना
गुलाबी अनुराग
पाटल व्रीड़ा
नील ईर्ष्या
गैरिक शून्यता
श्वेत सत्यबद्धता
और कंलक कालिमा से
सातरंग घुले मिले।

शब्द का जीवन्यास
कर रही होती है
विभोर मौनता।

कविता पास हो तो
रत्न-सा लगे
गहरी से गहरी व्यथा।

कविता पास है तो
जीवन गोद में उठा लेती है
मरण को
मृत्यु के प्रतिचुंबन में
जीवन के लिए होती है
कितनी भरपूर निविड़ ममता !

कविता पास हो तो
तुम बार बार आते हो
नासमझ, मुश्किल
और अनुरक्त
भावावेश बनकर।

कविता को आड़े कर
मुझे छाती में जकड़ लो
दो देह एकाकार होते हैं।

अमृत-मंथन-जात
आल्हाद से
कविता समेट लेती है
अपने लिए
परम पूर्णता...।

-:- नासमझ -:-

कभी कभी मुझे लगे
तुम मेरी कविता
बिल्कुल समझ नहीं पाते।

समझते तो
मेरी अतंद्र रातों के
प्रहरों को गिनते गिनते
तुम्हारी उंगलियाँ भी
थक चुकीं होतीं ...।

मेरे मर्मफाड़
दीर्घश्वास के बंवडर में
तुम भी संभाल
रख पाते नहीं
कोई प्रतिबंध।

मेरी सूखी आँखों की
निःस्वता की आँच में
जल जाते
सभी अगम्य पथ के
भय भ्रांति।

क्रमशः...
मेरा सर्वस्व ग्रास कर रही

तुम्हारी अनुपस्थिति के अँधेरे में
द्रवीभूत हो जाता
तुम्हारा आँखो देखा संसार।

फूल कोई झड़े तो
हिल जाने वाले इंसान तुम !!

मेरी पत्थर लदी छाती का
भार अनुभवने के बाद
तुम क्या बरस नहीं जाते
करूणा में !!

मेरी कविता समझते तो
तुम क्या जान पाते नहीं
कि मेरी कविता में
कुछ और कुछ भी
कहने को नहीं और ...।

कुछ निरर्थक शब्द
ओंठों से चिपके जीवन के
अनर्गल प्रलाप ज्यों ।
तुम्हारे चुबंन के बूँद भर गंगाजल के
अचेतन निमंत्रण जिसमें
परम नीरवता में घुल जाने को ...।

-:- आलाप -:-

अपनी दीर्घतम
नीरवता में ही
तुम मेरे कान में
सबसे अधिक बातें करते हो।

अनवरत चले
हमारा आलाप।

पुराण इतिहास के
पृष्ठ छोड़
अजस्त्र अनुराग की कहानी
बरसतीं हैं
हमारी बातचीत की
फूल सेज पर।

सभी में
जोड़ी जोड़ी होकर
सुंदर दिखे
हम दोनों का मुँह।

क्या बातें करते हो न जाने?
एक शब्द भी मैं
समझ नहीं पाती हूँ उससे।

इधर तुम्हारे
जलते ओंठ
उत्तप्त करे कानमूल।

पलकें खुद ब खुद
झुक जाती हैं
शब्द बदलते होते हैं स्पर्श में।

तुम्हारे अधर अंगुली के
अंतरंग संचालन तले
किस अनादि काल से
अब तक लिखे जा रहे
महाकाव्य की अंतरात्मा-सी
खुल खुल जाए
मेरी स्पंदित अनास्वादित देह।

धीरे धीरे
दृश्य और शब्द की
प्रति वंचना...व्यंजना
ढँकी जाती है
हमारे निविड़
निशब्दता से गढ़े
समाधि गर्भ में।

केवल हमारे
निरंध्र आलिगंन का
अनिर्वचनीय सुख
मुखर होता है।

क्षण में मेरे कान में
कहे- 'यही सृष्टि'
तो क्षण में तुम्हारे कान में कहे
-'यही तो प्रलय...।'

-:- सत्यानुभव -:-

जन्म मृत्यु की परिधि मे बंदी होकर
सुख दुख के मायाजाल में उलझ
रक्त माँस की देह को संबल कर
मैं कैसे होती इंद्रियातीत !

द्रुत पाद
दौड़ रहे क्षण सब
मेरे कान कान में कहते हैं

तू आज है
कल को नहीं।
आज जो भी
गांठ में है
कल वह गुम जाएगा।

प्राप्ति अप्राप्ति
सब अस्थिर यहाँ
एक द्वंद्वहीन
दोराहे में देखो
कैसे युगल भंगी में खड़े
आरत-विरत।

इतना सुनने के बाद
मेरी आँखे दोनों

कूद पड़ती हैं
तेरी आँखों के
चोर सैकत पर।

तेरे बाहुमूल की
मदिर गंध में
होती है नासाग्र उन्मत्त।

श्रवण उत्ताल होता है
चाहत की
तेरी प्रीति गुंजरन में

ओठों की गहराइयों में
तेरी रसना का
मधुर आस्वाद।

तेरी देह के
निविड़ पीड़न में
मुग्ध मेरा
तनु सिहरन।

स्पर्श स्पर्श में
न जाने मेरे किस
अगम्य अतल को
भेद जाए तू।

जब
सृष्टि की ईश्वरी
मैं आदिनारी

जानती हूँ...,
द्विधाहीन भाव से जानती हूँ
मिलन के इस अमृत लगन को
गढ़ने
त्रिकाल, त्रिलोक, त्रिगुण
बिंदु भर वीर्य में
होते हैं समाहित।

मैं यह भी जानती हूँ
देहातीत समाधि से
किसी ने निर्माणा नहीं
जीवन।

अगर जीवन सत्य
जीवन के लिए प्रेम सत्य
प्रेम के लिए देह सत्य
देह की लहरों में
उच्छल
रज वीर्य सत्य,

तो मेरे लिए
मोक्ष मिथ्या
ब्रम्ह अनित्य
केवल तुझसे
संयुक्त होने का
मुहूर्त्त ही सत्य
सत्य सत्य सत्य।

-:- पुनराय -:-

तुम्हारे
शेषतम अनुराग के
स्मृति प्रस्तर तले
छटपट
मेरी कभी भी
मर न पा रही भावप्रवणता।

विदा देती बेला
बारंबार बोले थे
जाओ,
अब मुकुलित हो
इस तीव्र आवेग से।

संसार को
हमारे हाथों बने
नियम अनुसार
अनुसरने की चेष्टा करो।

देखो तुम्हारे लिए
पग पग प्रतीक्षा कर रही है
जीवन की दिव्य सफलता।

अकेले तुम नहीं
एक बार अकेले में
भेंट होने पर

मुझसे सभी कहते हैं
यही बात।

मैं जानती नहीं
यह उनका
धारण करने का असामर्थ्य,
या मेरी निज की
एक नपे तुले पृष्ठ पर
न रह पाने की अयोग्यता।

हर बार, हार जाने के
निष्फल आक्रोश से
हृदय के अबोध भावावेश को
शिला पर पीटते समय
मेरे हाथ से खिसक
वह उद्भासित करता है
जल थल गगनमंडल !

पवित्र तेज़ से
मुझे अंधी कर दे।

मैं पुनराय तुम्हारी
बताई राह छोड़
बेराह पाँव रखूँ।

कोटि गुण विक्रम से
मेरी अवैध व्यथा और ज्वलन सब
पुनर्जन्म लेते समय
आर्त्त-आनंद में आत्मा
लिखती है...
स्निग्धतम प्रीति की कविता।

-:- अमुक्त-सुख -:-

खोल देने पर
ये निष्ठुर पवन
कहीं उड़ा न ले इसलिए तो
रूद्ध श्वास सा
तुम्हें दबा रखा है छाती से !

नहीं तो
कौन नारी इच्छा करती नहीं
उसके तारा जड़े सीमंत से
जरा खिसका दे ओढ़नी
ईर्ष्यातुर आँखों की भीड़ में
गुम हुई किसी अँधेरी रात में !

यहाँ मेरी छाती तले
तुम्हारा अपूर्व हल्कापन
क्रमशः मेदिनी से भारी हो आता है।

मुझे लगे मैंने दबा रखा है भीतर
त्रिकाल और त्रिभुवन
भय से काठ होते
अनुभव, चंदन-सा
मह मह महके ।
मैं छटपट होती
दुश्चिंता में

मुट्ठी परिमित
कच्ची मिट्टी की कलसी में
कैसे संभाल रखूँ
सात सिंधु पानी।

मैं तुम्हें
न्यून लगूँ
जाओ अपनी इच्छा से
चहलो ज़रा
मैं ज़रा निश्वास लूँ !

तुम लेकिन
गोरू से गुरूत्तर हो
मेरे कलेजे को
और दवाए जाओ
जैसे सचमुच
जन्म लेने को नाराज
कोई ब्रम्हज्ञानी ।

अब देखो
कैसे तुम्हारा महार्घ आतंक
मुझे पूरा लील रहा है
धीरे... धीरे...।

ना छिपा सकती हूँ ये गर्भ भार
ना परकाश पाती इस सुख को
जानती हूँ
प्रकाश मात्र ही
जो बिला जाए शून्य में...।

-:- कविता का शीर्षक -:-

परमार्थ को
प्रेम में द्रवित कर देने का
कौशल मालूम है मुझे।

खाली तुम
ईश्वर से एक किशोर हो जाओ

फोटोफ्रेम की रत्नवेदी से
उतर आओ
मेरी देह के आ-दिगंत
मुक्त प्रांतर में सो जाओ।

कुछ 'वाणी' उच्चारोगे सोच
शब्द ढूँढने का अपप्रयास छोड़ो
मेरी अधमुँदी आँख
और स्फुरित अधर को
महीन महीन चुबंनो से छू जाओ

देखो
तुम्हारे आत्मसंभरण के
पर्दे के इस ओर
मंत्रों को पाँव में
खटाने की मुद्रा में
कविता अलस तोड़ रही है
आओ
उसे तुम्हारी आत्मा का प्रियतम
शीर्षक दे जाओ...।

–:– दक्षिणा पवन –:–

दक्षिणा पवन बन
मेरे झरोखे पर दस्तक दे
अनमना प्रेमिक

झरोखा खोलने पर
असंभाल
देह घेर जाए।

साड़ी कपड़े अस्तव्यस्त करे
आँखे ओंठ
स्तनाकुंर
नाभी चूम जाए।

मेरे कर्ण रंध्र में
जीव्हाग्र चला
घन घन ढरकाए
अस्थिर पुलक।
क्यों इतनी इच्छा होती है
ये पवन
खोल देता कि
मेरे सीमांत के अंतर्वास
भेद जाता कि
मेरी देह के
सब अगम्य अंचल

निज भीतर के
सभी अनाविष्कृत ठाँवो में
मैं पहुचूँ
उसे अनुसर

खोज पाती
मेरे रक्त-माँस के
किस इलाके में है
गहन-चंदन-वन
किस निषिद्ध निश्वास के
उपवन से
कभी कभी तिर आए
मल्लि की महक।

पर प्रेमिका पवन
या पवन प्रेमिक
पकड़ते धरते
खिसक जाए

व्यामोह से।
मेरी निष्फल
अवाची यात्रा
जारी रहे
भेंट की आस में।

मेरे उन्मादपन का ईष्ट
वह अपहुँच अनुराग के
वाङ्मय अस्थि मज्जे से बना
अवयव जिसका
मेरे स्वप्न का
अचीन्हा नायक !

-:- उपहार -:-

मैं अपेक्षा करूँगा...।

न जाने क्या दिया
एक इस पद के आग्रह के साथ !

मैं सड़क पर
पड़े पत्थर से
इक भरीपूरी नदी हो गई
पलक झपकते...।

बहा ले गई
नहाने आई
सभी कुलवधुओं की साड़ियाँ।

सहस्त्र चाँद के उदय
सहसा उजरा उठे
इस पृथ्वी की
कोटि कोटि प्रेमिकाओं की
अमा-अंध विरह रात में।

कोई लाकर सेज भर बिछा गया
अंजुरी अंजुरी मल्लि फूल
पवन में
आम्रबौर की महक

घुलमिल...।
वास चंदन का फव्वारा
खुल गया
धू धू रौद्र रात में
xx x x
मैं जानूँ
तुम लौटा ले जाओगे
लहर सा, अपना ये आग्रह
आवेग से मुँदती
मेरी आँख खुलने से पहले।

लेकिन, चुन चुन
मुक्ता कुछ तो
उपहार दे जाओगे।

मेरी मुँदी पलकों पर
मेरे ओंठों पर
मेरी छाती पर
(हो सकता है मेरे गर्भकोष में),

संग्रह किए होंगे जो
तुम्हारे आवेग के
अथल सागर से...!!

-:- गोपन सुख -:-

अब जाना
एक अस्पष्ट कसक ने
मुझे वचा रखा है
अब तक...।

सूने आकाश में
एक पक्षी उड़ने पर
मेरे सबसे दुस्सह
बंधन के घाव
वह जरा सहला देता है।

भरपूर मेघ मालाओं को देख
मेरी खाँव खाँव रिक्तता को
एक बार पोंछ दे
गीले हाथों ...।

छिपा कर
महीन इक चुंबन दे दे
फूल पर तितली
उड़ती घूमने पर...।

संझा तारा उठे तो
उसकी आँखों से बूँद भर आलोक
टपक पड़े

मेरे अँधेरे लथपथ
भाग्य पर।

उसे एक बार
छाती से दबा लेती कि !
ढूँढते समय,
वह टप् से डूब रहा होता है
मेरे अंनत अंतर्दाह के
समुद्र बीच।

खाली कोई अगर
मुझ-सा
दुख की राह खोजता बटोही
उसका ठिकाना पूछ ले मुझसे।

किसी वहाने से
वह छूट आए
छिपने के ठाँव से...।
एक जोड़ी ढल ढल
नील कुँई वन मुस्करा दे
मेरी अवाक् आँख में।

उसके खेल सें
मैं किसी समय विभोर
तो किसी समय आकुल।

किसी गोपन सुख का द्वार खुल जाए कि
पाकर-न पाने का दवाब
एक दीर्घश्वास में !!

–:– चंपाफूल –:–

मुझे छिपा रखने की आकुलता में
अपने से छिप छिप घूमोगे
और कितने दिन?

मैं तो
कलंक का चंपाफूल एक
जरा पवन लगे
पकड़ में आ जाए।
और तुम तो जानते हो
यहाँ सभी का
मोक्ष की बजाय कलंक से
अधिक प्रयोजन।

किसी की सेज तले
किसके पाकेट में
या किसी की कविता कापी के
पृष्ठों की ओट में
सूख सूख झर जाते समय
मेरी कितनी आशा
तुम मेरे व्योमकेश होकर
सारे आवरण तुच्छ कर
स्पर्द्धित जटाएँ पसारे
उपस्थित होते !

गंगा या चंद्र के साथ
महक चहकने को
मुझे भी मिल जाता
अंजुरी भर ठाँव !!

-:- चित्रकार -:-

ऐसी तथास्तुमय नीरवता में...
हाथ को पूर्वापर के सारे तपफल
बढ़ा देने के लिए
अपार्थिव आवेग को
पाट कपड़े में बाँध
अब तक तुमने
सहेज रखे होंगे ये
मैं क्या जानती थी?

जानती तो
स्वप्न के विफल सुंदरपन में
जानबूझ राह भूलती नहीं बिल्कुल
तुम्हारे ठिकाने जा रही
रात की गाड़ी में
बिना टिकट यात्री हो
कब से पकड़ी गई होती।

जानते हो
क्लांत हो
स्वप्न के अँधेरे भीतर
असहाय लुढ़कने के पहले
उसी मुहूर्त्त के
जरा से उज्जवल सत् के लिए
मैं कितने जन्मों.. कितने जन्मों से
अभुक्त.. अतंद्र रही थी !!

वार बार आँका था
मिटाया था
उसी आलोकित लग्न का नक्शा ।
सभी रंग और अनुपात
ठीक हुआ या नहीं जानने को
ईश्वर को नीदं से उठा
पूछी थी हर जन्म में।

अपनी हर बार की मृत्यु में
मैंने पोंछ दिए थे
मन को न लेने वाले
सभी अवांछित
बिंदु और रेखा।

तथापि मेरे सत्य का स्वरूप
स्पंदित हो नहीं रहा था
मैं उसके लिए
सौ सौ बार
जनमती थी..मरती थी।

आज मेरे मृत स्वप्न के अशरीरी हाथ
मुझसे रंग तूली
छीन लेने पर
हे दुर्लभ चित्रकार !
तुम आकर आतिथ्य याचना कर रहे हो।

क्या केवल
मेरे लिए वह जीवन्मय मुहूर्त्त एक
अविकल आँक दोगे इसलिए !!

-:- पूर्णतमा -:-

केश में अबोध शैशव
माथे में प्रश्निल कैशोर
ओठ पर दूरंत तारूण्य
शब्दो में अनासक्ति
और आँख में
कवि की मग्नता लिए
वे आये...।

मुझे देखते ही बोले
आओ, आज अपनी रूचि से
तुम्हें सजाऊँ !

कटि पर दक्षिण दिक् का
नीलाचल पहना
उरोजों में ऐशान्य का
कांचीदाम कस
माथे पर...
प्रतीची उत्तरी तान दूँ।

मेरे कुछ कहने से पहले
कंपित कर पल्लव चला
उन्होंने मेरे अंग अंग में
सजाए दिग्वसन सारे।

मैं निश्चय
कोई देवी या
विद्याधरी प्रायः दिखी होऊँगी।

नहीं तो किसलिए वे
बार बार आत्मविस्मृत से
देखते इतना !

शेष में
किसी अलौकिक अनुभव की
सेज पर आँखे मूँदे
लुढ़क गई अनायत्त।

उन्होंने अब
मेरे पाँवो मे पहनाया
अयुत चुंबन से
रुरझुन निक्वणित
मर्कत नुपूर।

धीरे ...
उनके स्पर्श का रत्नभंडार खुल गया।
मेरे कंठ में मांडी
पुलकित आश्लेष की चापसरि
छाती में घन वक्षपीड़न का चद्रंहार
नाभी में
निविड़ उरूबंध की
स्फटिक मेखला...।

मैं जान पाई नहीं
कब उन्होंने

मेरे माथे पर सजा दी
अपने तृप्त ओष्ठाधर की
प्रवाल माथामणि

स्मित जड़ाउ, दृष्टि का दर्पण तोल
बुला रहे हैं
उठ उठ रानी।
वेश विन्यास शेष हुआ
अब देखो तो
कैसे सजी है तुम्हारी
पूर्णतमा भंगिमा !!

-:- नरक वरण -:-

नर्क और नारी,
एक से...।

ज्ञानी का सिद्धांत सुन
मैं महाअज्ञानी वामा ने
छिप छिप पाँव धरे
नीचे नीचे
देखने को
नरक और मैं
सचमुच कितने सम !!

नरक द्वार में
पाँव रखते न रखते
माथे पर घूम गई
कैसी तो एक आर्द्र कोमलता।

पाँव तले,
प्रायश्चित लथपथ भूमि
कान के पास
पश्चाताप-दग्ध हृदय की
वाष्परूद्ध बात।
धूलि में
नक्षत्र से अधिक झिलमिल
निरहंकार।

पवन में समर्पण
पाप में मुग्ध रमण
यातना में...
वंचित अभिलाष की
संचित कविता ।

पग भर आगे ...।

आत्म दहन वह्नि में उज्ज्वल रौरव।
आत्म-घात-लहू से पुष्पित कुंभीपाक।
आह कितना अनाविल ये नरक !!
भीतर वाहर अंकित
अकैतव इंद्रियानुभव की
पंचवर्णी चिता...।

शेष में
अंतुड़िशाल से
मेरी बाँह में बँधा
सीता-सवित्री का
पवित्र रक्षाकवच
मुझे त्याज्य कर चला गया
मेरी सौभाग्य सीमा के उस पार।

आविष्ट दूसरा पग
आगे वढ़ाई।
न जाने कव से इहधाम
त्याग चुके
मेरे प्रिय कवि एक
दौड़ आए

मेरा हाथ उलझा दी
अपनी रक्ताक्त हथेली से ।
और खूब ऊँचे गले
सब सुनें इस अंदाज में
बोले...

'इतनी देरी की'?
आओ आओ
मैं तो
कबसे ताकता बैठा हूँ
तुम्हें !!

-:- यूँ मत पुकारना -:-

फिर बुलाए
नींद से सुबह सुबह ....!!

इतना मना की थी
यूँ मत पुकरना
भोर तारा
पुकारे ज्यों
निझूम रात को।

ऊष्म वर्षा बिंदु
पुकारे ज्यों
माटी तले कूँ कूँ
काँ काँ होते
छिपे बीज को।

मना की थी ना
यूँ मत पुकारना
बंवडर के हाथ के इशारे सा
पके पत्तों को ।

तुम क्या जानते नहीं
क्या क्या घट जाता है
यूँ बुलाने से !!

धर वनस्त हो जाए
तो वनस्त हो जाए घर।
पर अपना हो जाए
तो अपना हो जाए पर।

पुण्य की समस्त परिभाषा
असत्य हो जाए
प्रेम की ओढ़नी तले
पाप का चेहरा दिखे
प्रतिक्षिता नववधू सा
निष्पाप, लाज जरज का।

तुम क्या जानते नहीं
आज तक..
कलंक पसरा लिए
उच्चाट हो
ब्रम्हांड सारा घूम रही
राधा एकाकिनी ।
किसी ने
उसे यूँ
पुकारा था इसलिए
मुरली के पंचम रंध्र में...।

सब जान बूझ
किस जन्म की
शत्रुता भुनाने
यूँ पुकार रहे हो?
जीवन के लिए विष
और मृत्यु के लिए
अमृत
जिस पुकार में...।

-:- आश्रय -:-

दुख के खूब कठोर
चट्टान पर ।
नीरवता की दीवार दे
हताशा की छत ढाँक दी।

सारी धूप
सारे बवंडर
सारे प्रलय से
निरापद दूरी में
तुम्हारी मेरी चाहत को
जरा ठाँव देने को
ना मालूम सा
हृदय आकृति से भी
सात-छोटा एक घर बनाया।

पर आज देखो
मेरा वह गोपन वास
एक स्थिर नक्षत्र में बदल गया है।

समुद्र का दिग्हारा नाविक
उसे देख पथ निर्धारण करता है।

कोटि कोटि ग्रहतारा

खोजते. हैं निज कक्षपथ
उसे ही केंद्र कर।

अब कहाँ मैं छिपाऊँ
इस ओंकार आश्रय को भी
चारों ओर बेशुमार भीड़ देख
तुम जो गए हो इतना डर !!

-:- अभिषेक -:-

रात अधिक होने पर
मैं तुम्हें याद कर
रोती हूँ।

कुछ दिन हुए,
ये मेरी
सबसे प्रिय कार्यसूची।
पहले
मेरी आँसू की बूँदे
मुझे अँधी कर देती हैं।

आसपास का संसार
डूब जाता
उस समाधिस्थ अँधेरे में।

फिर धीरे धीरे
संझा तारा-सा
उग आये तुम्हारा मुँह।
मैं उसके पास
अपनी निराभरण सत्ता
समर्पण करती हूँ
भूल कर अन्य सब कुछ।

तुम भी
असंभाल बाहु पसारते हो

कितनी आकुलता से
मेरे आँसू बहने
और तुम्हारे ओंठ से
उस आँसू को पोछने की
प्रतियोगिता चले।

स्वप्नों के
मायावी सौदंर्य को
प्रतिहत कर
खिल उठे
परस्पर हताशा का
युगनद्ध रूप।

देह उतीर्ण होती है
तन्मयता के चरम बिंदु को।
प्राणघातक दुख सब
बनते, तटस्थ दर्शक।

मुझ सी
अस्थिर नारी
समझ नहीं पाए
इस महारास की रेणु भर
धूलि होने के
वह योग्य या अयोग्य।

तुम ठीक उस समय
मेरे माथे में पहना देते
रासेश्वरी का मुकुट
समय से छिपकर।

-:- विस्मृति में -:-

यूँ राह बदल कर चले जाते हो न
तुम हमेशा?
न कहे न पूछे?
कितने कितने
महार्घ ठिकाने
पाँव से ठेल
चले गए होगे तुम।

कितने महा महाद्रुम
लुढ़क गए होंगे
तुम्हारी नीरव उपेक्षा में
वतास में।

मेरी क्या बिसात
एक दूब केरी भी तो नहीं
मरा तिनका कहने पर भी
अधिक हो जाए।

तुम क्या जानते न होगे
मुझ पर पड़ी
रात की ओंस बूँद एक
तुम्हारी दृष्टि तेज़ से
हीरे सी दमकती रहती है।
तुम्हारे आँखे फेरते ही

मुझे वह
और जीर्ण पलित कर देगी।

तुलना नहीं तुम्हारी निष्ठुरता की
फिर भी क्यों कहो तो।
प्रेम की प्रतिमूर्ति एक
कल्पते समय
तुम्हे छोड़ और कोई
रूप दिखता नहीं
और कोई याद आता नहीं।

मैं तो
सेज से श्मशान तक
खोज खोज थक गई।
अब गिड़गिड़ा रही
हाथ ओंठ लिए।

याद न आओ ऐसी
जगह एक खुद चुन कर
इस बार मेरी खातिर
वहीं रहो तो !

-:- शेष चित्र -:-

मुझे कोई
चित्र आँकना
सिखा देता कि !

मैं राह में हाट में
घर और घाट में
क्रमशः अभ्यास करते करते
शेष मे इस दिंगत छूता शस्य क्षेत्र
चक्रवाल चूमता बेला बालू
अशांत समुद्र
और अंनत आकाश में
आँक देती तुम्हारी छवि।

इतनी सुंदर
इतनी बोलती सी
आँकती आँख ओंठ कपाल कि
कोई आँख फेर पाता नहीं
बातचीत करते
ये अपूर्व सुंदर पुरुष
ये कौन, कौन ये?
एकाध तुम्हें
पहचानने वाले, चौंक पड़ते,
अरे ये तो राई दास
अपने गाँव के कवि
फिर

हल्ला मच जाता
किसने आँका ये चित्रपट?

किस अधिकार से
बिना किसी की अनुमति से
खोल दिए इतने रंग इतना रूप !

पकड़ लाओ उस पागल चित्रकार को,
उसे प्राणदंड दो
कम से कम एक उदाहरण
रहे संसार में
कि यहाँ शुद्ध प्रीति के रंग से
किसी को आँकने से बढ़कर
और नहीं कोई महापाप।

मुझे वे ढूँढने से पहले
मैं दौड़ आ खड़ी होती
उनके सामने।
कहती रूको रूको
उनका वरवेश अभी मैं
आँक नहीं पाई।

तुम्हारी धारदार छुरी से
जरा खोल दो तो
मेरे हृत्पिंड की कठिन ढाँकनी।

उन सुढल चरणों में
महावर का चक्र आँक दूँ
जन्मकाल से छाती में सहेजे
लाक्षारस में अंगुलि डुबा।

-:- मुट्ठी भर शून्यता -:-

मुट्ठी भर शून्यता के लिए
सब कुछ बाजी लगा देने वाला
व्याकुल मन ही जानता है
रहस्य, उस मुट्ठी भर शून्यता का।

असंख्य परिचय के
कोलाहल को पीठ कर
छाती तले साफ केनवास् सा
शून्यस्थान को सहेज रखता है
और अपेक्षा करता है
कब आकर, रंग की
प्रथम बूँद
वहाँ थोप देगा कोई चित्रकार।

वह जानता है
ईप्सित शिल्पि एक
पहुँचते क्षण
आप ही आप ये शून्यता
व्याप जाएगी, जल-थल
और सचराचर।

बाकी सब
गायब हो जाएँगे
जिधर देखें

दिखेगी कारीगरी
केवल उसकी निपुण तूली की।

खाली रंग नहीं
एक अपूर्व मिश्रित महक
पसरती रहेगी।

जिस महक को
और जरा घनीभूत कर
अक्लेश में गढ़ा जा सकेगा
स्वप्न में भेंटे
रसिक प्रियतम का
कमनीय दीर्घ कलेवर।

ये सब जाने इसलिए तो
प्राणमूर्च्छा उस शून्यता को
हृद में जकड़े रहता है वह !

इधर
प्रलय पयोधि तले
डूब रही होती है
उसकी माटी,
उसका आकाश
उसका समग्र संसार !

-:- शुभेच्छा पत्र -:-

तुम्हें पाने के बाद...।
कितनी आस्था हो गई थी
प्रीति की शुद्धता
हृदय की विमुग्धता
और कविता पर !!

फिर भी
मेरे भाग्य को छीः कर के
कैसे अमायिक भाव से
तुम एक दिन सब को
नहीं कर दिए...
केवल सामयिक अपख्याति डर से।

तुम्हारी बात
चुपचाप मान लेने के सिवाय
मैं और क्या कर पाती?
तुम्हारे जन्मदिन
या नये वर्ष में
मैं तो और
भेज न पाई होती
एक रंगीन शुभेच्छा पत्र
अंकित था जो
एक अवैध गर्भपात के
करूण रक्त में !!

-:- प्रमाणिता -:-

राह के वीच
मैं खड़ी

संकोच
संशयशून्य
आपादमस्तक नग्न
मेरी अंतरात्मा।

सत्यकामिनी मेरा नाम
अघोरी का भ्रम लाए
मेरा निटोल प्रत्यंग
सतीत्व से
भस्म-विभूषिता।

देह को
प्रेम के
महाभाव की
मधुरिमा में
विशुद्ध
विकेंद्रित करना
मेरा एकमात्र प्रण।

क्या जाने

किस अदृश्य
हठ योगी के
सम्मोहन में
मैं चली आयी हूँ
कांचन से निकांचन को
गृहागंन से श्मशान को
कितने निर्मर आश्रय की
चिताग्नि के वलय भीतर
बार बार
अपने विवस्त्र
शव पर
सजाया है
श्वेत-पद्मासन।
छोटे छोटे विश्वास के
निष्ठुर निर्वासन को
वरण किया है असहाय
सुनने
कविता का
अविश्वसनीय सत्यबद्धता का
वज्र कोमल उच्चारन।

कहीं तपस्या
कहीं जीवन
कहीं खेल
तो कहीं
भ्रांति के संपर्क मेरे
मैं तो त्याग चुकी
सिद्धि और ग्लानि को
कब से

भावोन्माद की
क्षण-जाह्नवी में।

बेशुमार प्रश्नवाचक से
बना, देखो
मेरा समग्र अस्तित्व।

अपने अपने इच्छित
उत्तर अनुयायी ही
तुम्हें मिल जाएगा
तुम जिसे ढूँढ रहे
तथाकथित
वह चरित्र-प्रमाण।

-:- रसिक प्रिय -:-

लाख टूटी फूटी छलना
फटा चिथड़ा छद्मवेश।
और जानबूझ ठगे जाने की
बड़िमा सिर पर लादे
तुम रहो
मान्यगण्य बने।

जगत आँख में
सजो प्रवाद-पुरूष।
मैं क्षुद्र अकिचंन नारी
मेरा इतना ज्ञान ध्यान कहाँ
तुम्हारी प्राप्ति-अप्राप्ति, क्षणकीर्त्ति
युद्ध जय या आयुष का
गणित याद रखूँ।

मैं तो केवल
मेरे किशोर-प्रेमिक को
हाथ पकड़ बुला लाना जानूँ
तुम्हारी आत्मप्रवंचना के
घने जंगल भीतर से
अपने सपने की निकुंज सेज को
रचने रास।

तिल भर भी मलिन नहीं होती
वह कमनीय
पद्मपलाश नयन की ज्योति।
सामान्यतम क्षीणता नहीं
उसके आवेग विभोर हृदय के स्पंदन में
जरा भी बीते नहीं
मेरे रसिक प्रियतम का
वय या बल।

-:- आकाश के भ्रम में -:-

कुछ एक
स्वच्छ निर्मल हल्के हल्के भाव ने
झलका दिया मुझे।

मैं चौंकी
आः... आकाश
मेरे हाथ घेरे में !!

पक्षियों सहित प्रतियोगिता होगी
उड़ने की।
मेघों के संग उड़ तिरने की
तारा सहित चक् चक् दिखने की।
और दिगवलय को हराना होगा
समुद्र को बाहुपाश में
जकड़ धरने में

मैं माटी पर से
आकाश को तोड़ धँरू कहकर
खुशी खुशी झुकी जरा।

टूटे दर्पण के एक टुकड़े काँच ने
मेरे प्रतिबिबं को
क्षत विक्षत कर
रख दिया
मेरे रक्ताक्त हाथ पर...।

-:- एक वर्ष -:-

फिर एक वर्ष...?
इतना अल्पकाल का जीवन
उसमें और एक वर्ष
अलग कर देना होगा
तुम्हारे संग दो बातें करने को?

मेरे इस
तुच्छ प्राण पर
स्थान काल पात्र के
कुछ दावे हैं ये
कैसे मैं पूरी तरह
भूल गयी थी।
तुमसे मुहूर्त्त का
उपहार पाकर।

मैं जानती थी
मैं जरा भी कंधे पर
ढो पाऊँगी नहीं
संसार भर के सुख से
तैयार हुए
उस मुहूर्त्त को...।

मैं जानती थी
मैं जरा भी सह नहीं पाऊँगी
संसार भर के

दुखों की प्रतिश्रुति
दे रहे उस मुहूर्त्त को....।

तथापि
तुम्हारे मुझे छूने भर से
आत्मा के विभोर संगीत-सा
मैं उसी मुहूर्त [illegible] कर
उठी थी गान।

वर्ष के बाद।
तुम ठीक जानते हो
मुझे याद दिलाना और
जरुरी नहीं होगा।
लौकिकता रक्षा कर
तुम आकर जहाँ ढूँढोंगे
मैं वहाँ बिल्कुल न रहूँगी।

मैं उस एक मुहूर्त्त के
श्मशान में
उलजुलूल एक लता बनकर
बहुत बहुत पीछे पड़ी रहूँगी।

तुम उम्मीद कर रहे
ठिकाने पर
मुझे अनुपस्थित देख
तुम्हें खूब हल्का भी लगेगा

कम से कम देने को
सफाई तो एक मिलेगी
कि मैं ही तुम्हारे स्नेह के
लायक हुई नहीं !!



अपर्णा महांति

समकालीन ओड़िया कविता में अग्रणि निर्भीक नाम। एक विद्रोही काव्य स्वर शब्द और भाव की तीक्ष्णता और प्रसरणशीलता के लिए विख्यात।

संप्रति केंद्रापड़ा के तुलसी महाविद्यालय में ओड़िया भाषा साहित्य विभाग में अध्यापना रत। 'अव्यक्त आत्मीयता', 'असती', 'निशब्द में', 'अतिथि', 'पूर्णतमा', काव्यग्रंथ प्रकाशित। अनूदित काव्य संकलन–कवि गुलजार का 'पुखराज प्रकाशित'।



महेंद्र शर्मा

ओड़िया की कई कृतियों का अनुवाद। आठवें दशक में 'धर्मयुग' में कई कहानियाँ प्रकाशित प्रशंसित। कुछ समीक्षा प्रकाशित 'सृजनः भारतीय कला संदर्भ–सौंदर्यशास्त्र पर, कथा संग्रह 'रियाज़ और रियाज़' प्रकाशित।

पूर्व अध्यक्ष पी.एस.कालेज बालकाटी, भुवनेश्वर।